दैनिक जागरण

Date:12-10-22

मध्याह्न भोजन

संपादकीय

उत्तर प्रदेश सरकार ने परिषदीय विद्यालयों में मध्याह्न भोजन की धनराशि में 9.6 प्रतिशत की वृद्धि की है। यानी प्रदेश के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अब प्रतिदिन प्रति छात्र 5.45 और उच्च प्राथमिक विद्यालयों में 8.77 रुपये खर्च होंगे। प्रदेश सरकार ने छात्रों को भोजन व्यवस्था को और अनुकूल बनाने की चिंता की है, इसके लिए बह साधुवाद की पात्र है, लेकिन छात्रों को पौष्टिक आहार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से शुरू की गई यह योजना कुछ कारणों से अव्यवस्था का शिकार हो जाती है। उदाहरण के तौर पर कनवर्जन कास्ट (परिवर्तन लागत दर) का भुगतान दो महीने से नहीं हो पाया है, जबकि रसोइयों को मानदेय का भुगतान मई से अभी तक नहीं हो पाया है। कनवर्जन कास्ट का भगतान न होने के कारण स्कूलें को खाद्य सामग्री खरीदने के लिए दुकानों पर उधारी का सहारा लेना पड़ता है। बकाया अधिक हो जाने पर दुकानदार खाद्य सामग्री देने में आनाकानी करने लगते हैं। खासकर ग्रामीण इलाकों में इस समस्या का प्रायः सामना करना पड़ता है। छोटे दुकानदार 10-15 हजार का बकाया कन करने की स्थिति में नहीं होते। मानदेय न मिलने के कारण रसोइयों को परेशानी का सामना करना पड़ता है, ऐसे में कई बार प्रधानाध्यापकों को अप्रिय स्थिति का सामना करना पड़ता है। इस सबके अतिरिक्त भोजन के लिए निर्धारित मानकों के अनुपालन को लेकर आए दिन सवल उठते रहते हैं। प्रतिदिन के लिए निर्धारित भोजन की विकल्प सूची का भी अनुपालन नहीं होता। अभी हाल ही में अयोध्या के एक विद्यालय में बच्चों को नमक के साथ चाबल परोसे जाने का वडियो वयरल हुआ था। पूर्व में भी इस तरह के प्रकरण सामने आए हैं। कहना गलत नहीं होगा कि व्यवस्था में कहीं न कहीं व्यतिक्रम है, तभी ऐसा होता है। वैसे ते बोजना के तहत पूरी व्यवस्था का दायित्व प्रधानाध्यापक पर होता है, पर इसमें ग्राम प्रधानों की मनमान भी बाधा बनती है। कई विद्यालयों में मध्याह्न भोजन की व्यवस्था ग्राम प्रधान स्वयं देखते हैं, क्योंकि प्रधानाध्यापक उनके दबाव में होते हैं।

Date:12-10-22

ऊर्जा संकट के सबक

शिवकांत शर्मा, (लेखक बीबीसी हिंदी के पूर्व संपादक हैं)

यूरोप इस समय ऊर्जा के गंभीर संकट से गुजर रहा है। ऊर्जा की बड़ी खपत वाले इस्पात, शीशा, जस्ता और एल्यूमीनियम कारखानों को पता ही नहीं कि उन्हें उतने दामों पर गैस और बिजली मिल पाएगी या नहीं जितना वे चुकाने में सक्षम हैं। लोग अनिश्चित हैं कि सर्दियों में वे अपने घरों को गर्म रख पाएंगे या नहीं। यूरोपीय संघ ने अपने 27 सदस्य देशों से गैस की खपत में 15 प्रतिशत कटौती करने को कहा है। जर्मनी, फ्रांस और स्पेन ने बिजली बचाने के लिए रात को स्मारकों की रोशनी बंद करने और सार्वजनिक भवनों और स्थलों की हीटिंग-कूलिंग को कम रखने के फैसले लिए हैं। घरों, दफ्तरों और सार्वजनिक इमारतों को ऊर्जा किफायती बनाने की योजनाएं चलाई जा रही हैं ताकि उन्हें गर्म करने और ठंडा रखने में कम ऊर्जा खर्च हो। ऊर्जा की खपत में किफायत बरतने की अपील की जा रही है। इस ऊर्जा संकट के दो पहलू हैं। एक तो यूरोप के गैस भंडार पूरी तरह भरे नहीं हैं, क्योंकि यूक्रेन पर हमले के बाद से रूस ने पर्याप्त गैस आपूर्ति नहीं की। वहीं लाकडाउन से उबरने के बाद बढ़ी आर्थिक गतिविधियों के साथ-साथ गर्मी-सर्दी दोनों के बढ़ने से ऊर्जा की मांग बढ़ी है। अमेरिका और यूरोपीय संघ ने नए आर्थिक प्रतिबंधों में रूसी तेल के दामों की निश्चित सीमा तय कर बैंकों से कहा है कि रूसी तेल उससे ऊंचे दामों पर न खरीदा जाए। इससे कुपित राष्ट्रपति पुतिन ने यूरोप की गैस आपूर्ति बंद कर देने की धमकी दी है। हालांकि यूरोपीय संघ के अनुसार उसने अपने गैस भंडार तीन चौथाई से अधिक भर लिए हैं, जो सर्दियों के लिए पर्याप्त हैं, परंतु आशंका यही है कि रूसी आपूर्ति बंद होते ही बाजारों में हाहाकार मचकर ऊर्जा संसाधनों की कीमतें और ऊपर जा सकती हैं।

ऊर्जा संकट का दूसरा पहलू है गैस और बिजली के दामों का लोगों और उद्योगों की क्रयशक्ति से ऊपर चले जाना। साल भर में गैस के दाम सात गुना से अधिक बढ़ गए हैं। यूरोप की आधी से ज्यादा बिजली गैस से बनती है, तो बिजली के दाम भी तेजी से बढ़े हैं। ब्रिटेन में औसत घरों का गैस और बिजली का सालाना बिल सवा लाख रुपये से बढ़कर साढ़े चार लाख रुपये होने वाला था। सरकार ने राहत के लिए गैस और बिजली दरों की ऊपरी सीमा तय कर दी है और कंपनियों को होने वाले घाटे की भरपाई सरकार करेगी। इससे यूरोपीय देशों के ऊर्जा खर्च में करीब दो लाख करोड़ डालर की बढ़ोतरी होने जा रही है। ऊर्जा की महंगाई से बचाने के लिए यूरोपीय संघ ने 14,000 करोड़ डालर की राहत संबंधी घोषणाएं भी की हैं। इससे यूरोपीय सरकारों पर कर्ज का बोझ तेजी से बढ़ रहा है। ब्रिटेन का राष्ट्रीय कर्ज जीडीपी के 96 प्रतिशत को पार कर चुका है। यूरो मुद्रा वाले यूरोपीय देशों पर भी लगभग इतना ही कर्ज चढ़ चुका है। अमेरिका की

स्थिति और भी खराब है, क्योंकि वहां राष्ट्रीय कर्ज जीडीपी का सवा गुना हो चुका है। कर्ज का यह बोझ ऐसे समय बढ़ रहा है, जब इन देशों के केंद्रीय बैंक महंगाई पर अंकुश लगाने के लिए तेजी से ब्याज दरें बढ़ा रहे हैं। ब्याज दरें और कर्ज का बोझ बढ़ने से सरकारों को मिलने वाले नए कर्ज की दरें और भी तेजी से बढ़ रही हैं। इसकी वजह से पाउंड, यूरो, युआन और रुपये जैसी सभी प्रमुख मुद्राओं की हैसियत डालर के मुकाबले तेजी से घट रही है। महंगे होते कर्ज और मुद्रा की घटती हैसियत महंगाई की आग में घी का काम कर रही हैं। इस तरह दुनिया महंगाई पर अंकुश लगाने के उपायों की बदौलत बढ़ती महंगाई के दुष्चक्र में फंस गई है।

ऊर्जा संकट और महंगाई के दुष्चक्र का मुख्य कारण यूक्रेन पर रूसी हमला है, मगर वही एकमात्र कारण नहीं। मूल कारण यूरोप की रूसी ऊर्जा पर निर्भरता है। यूरोप ने परमाणु अस्त्रों की ढाल से सीमाओं की रक्षा तो सुनिश्चित कर ली, मगर अर्थव्यवस्थाओं की रक्षा के लिए संकट काल में ऊर्जा सुरक्षा का प्रबंध नहीं किया और हरित ऊर्जा की राह पर निकल पड़े। अब पुतिन की धमकियों ने यूरोप को सबक सिखाया है कि ऊर्जा आत्मनिर्भरता राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए परमाणु ढाल से भी जरूरी है, क्योंकि ऊर्जा के बिना न अर्थव्यवस्था चल सकती है और न सेना। इसलिए यूरोप अब तीन मोर्चों पर काम कर रहा है। तेल की तानाशाही से मुक्ति के लिए रूसी ऊर्जा पर निर्भरता खत्म करना, परमाणु ऊर्जा पर पुनर्विचार करते हुए गैस के नए स्रोतों की तलाश करना और हाइड्रोजन ऊर्जा समेत हरित ऊर्जा के स्रोतों का तेजी से विकास करना।

भारत का ऊर्जा संकट यूरोप जितना गंभीर नहीं है, फिर भी भारत को यूरोप के अनुभव से सीखने की जरूरत है। रूस से रियायती दरों पर मिल रहे तेल के बावजूद भारत का वार्षिक ऊर्जा आयात बिल बढ़ रहा है। हर साल देश की बड़ी भारी संपदा खाड़ी के अरब देशों और रूस जैसे ऊर्जा निर्यातक देशों के पास जा रही है, जिसे शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे बुनियादी क्षेत्रों के विकास में लगाकर भारत का कायाकल्प हो सकता है। प्रधानमंत्री मोदी ने भारत को 2070 तक कार्बन शून्य बनाने का एलान किया है। चूंकि भारत का प्रतिव्यक्ति कार्बन उत्सर्जन यूरोप और अमेरिका की तुलना में बहुत कम है तो उसे जल्दी से हरित ऊर्जा अपनाने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, लेकिन भारतीय शहरों की जलवायु इतनी जहरीली हो चुकी है कि अगले 50 वर्षों के इंतजार की कल्पना से ही मन सिहर उठता है।

भारत यदि अपने पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों एवं परमाणु, सौर, पवन और हाइड्रोजन जैसे हरित ऊर्जा स्रोतों के जरिये ऊर्जा स्वाधीनता हासिल कर ले तो वह उस बचत को नए हरित उद्योगों के विकास में लगा सकता है। हरित क्रांति ने भारत को खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बनाया। आज ऊर्जा के क्षेत्र में वैसी ही आत्मनिर्भरता चाहिए। अमेरिका और चीन को पीछे छोड़ खाड़ी के देश भारत के सबसे बड़े व्यापार साझेदार बन गए हैं, लेकिन उसमें करीब 6,600 करोड़ डालर का व्यापार घाटा है, जिसका मुख्य कारण ऊर्जा का आयात है। इस कारण जहां भारत की संपदा खाड़ी देशों में जा रही है तो वहीं उसे नुपुर शर्मा जैसे प्रकरणों पर तानाशाह देशों की बातें सुननी पड़ती हैं। संप्रति ऊर्जा स्वाधीनता के बिना कोई देश सच्चे अर्थों में आर्थिक महाशक्ति नहीं बन सकता। इसीलिए अमेरिका ने लंबे प्रयासों के बाद ऊर्जा स्वाधीनता हासिल की। यूरोप के वर्तमान ऊर्जा संकट का सबक भी यही है।

Date:12-10-22

मुफ्त का आकर्षण

शशांक शेखर

भारत में अब सभी चुनावों में निशुल्क तोहफों के वादे एक मानक बन चुके हैं। देश की हरेक पार्टी अपने लोक-लुभावन वादों से जनता को अपनी ओर आकर्षित करती है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी इस पर चिंता भी जाहिर की थी। इन सबके बावजूद लुभावनी वादों की झड़ी लगी हुई और नेताओं के द्वारा लगातार लोक-लुभावन घोषणा किए जा रहे हैं। अब गुजरात और हिमाचल प्रदेश में यही देखने में आ रहा है। एक तरफ आम आदमी पार्टी रैली करके जनता को लुभावने वादे से मोह रही है, वहीं कांग्रेस भी इसमें पीछे नहीं है। अरविंद केजरीवाल हर महीने तीन सौ यूनिट तक मुफ्त बिजली, सरकारी स्कूलों में निशुल्क शिक्षा, बेरोजगारी भत्ता, महिलाओं को एक हजार रुपए का भत्ता और नए वकीलों को मासिक वेतन देने जैसी कई रियायतें देने की बातें कर रहे हैं। वहीं कांग्रेस भी मतदाताओं को रिझाने और सत्ता में लौटने के अपने लंबे इंतजार को खत्म करने के लिए कई लुभावने वादे लेकर आई है। अब भाजपा के लुभावने वादों का इंतजार है। हालांकि कहने को भारतीय जनता पार्टी इन वादों के खिलाफ है।

विडंबना है कि इस मुफ्त की रेवड़ी से आम जनता को फायदा पहुंचता है। लेकिन इसका कड़वा सत्य यह है कि ज्यादातर वादे सिर्फ नेताओं के मुंह तक ही सीमित रह जाते हैं और आम जनमानस इन नेताओं के चक्कर में पड़ जाते हैं। अगर ये लोक-लुभावन वादे मिल भी जाते हैं, तो इसका खमियाजा बाद में जनता को ही भुगतना पड़ता है। बड़े-बड़े होर्डिंग और बैनर लगाकर बड़ी-बड़ी घोषणाएं करने वाली पार्टी जनता को बेवकूफ समझते हैं। तभी तो ऐसा करते हैं और जनता भी इनकी भाषणों में उलझ जाते हैं।

Date:12-10-22

अर्थशास्त्र के नोबेल

संपादकीय

आज जब आर्थिक मंदी का खतरा दुनिया के सिर पर मंडरा रहा है और अमेरिका से लेकर यूरोप व दक्षिण एशिया तक सरकारें इससे बचने के लिए रोज-रोज हाथ-पैर मार रही हैं, तब बैंकिंग क्षेत्र के तीन गहन अध्येताओं और अमेरिकी अर्थशास्त्रियों बेन बर्नेन्की, डगलस डायमंड और फिलिप डिबविग को इस साल के अर्थशास्त्र के नोबेल से नवाजे जाने का महत्व समझा जा सकता है। आर्थिक मंदी के पीछे बैंकों व वित्तीय संस्थाओं की कितनी बड़ी भूमिका होती है, यह अब

कोई छिपी हुई बात नहीं है। हम भूले नहीं हैं कि साल 2008 में अमेरिका की सबसे बड़ी वित्तीय संस्थाओं में से एक लेहमन ब्रदर्स के दिवालिया होने के बाद कैसे एक के बाद दूसरे बैंक व वित्तीय संगठन धराशायी हो गए थे और विश्व भर की अर्थव्यवस्थाओं को भारी संकट का सामना करना पड़ा था। ऐसे में, इन तीनों अर्थशा्त्रियों का काम काफी महत्वपूर्ण है, जो बताता है कि संकट के दौरान बैंकों की भूमिका कितनी बड़ी होती है और उन्हें धराशायी होने से बचाने के लिए किस-किस तरह के कदम उठाए जाने चाहिए।

यह महज संयोग नहीं था कि 2008 की आर्थिक मंदी से भारत बहुत हद तक बच गया। दरअसल, तब देश की बागडोर एक अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री के हाथों में थी, जो भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर भी रह चुके थे और ऐसे किसी भी हालात से निपटने में बैंकिंग क्षेत्र के रोल से वाकिफ थे। मनमोहन सिंह सरकार ने तब फौरन 30,700 करोड़ रुपये के प्रोत्साहन पैकेज की घोषणा की थी, और दूसरे तमाम बजटीय प्रावधान किए थे। अर्थशास्त्री बेन बर्नेन्की का भी कहना है कि पिछली सदी के तीसरे दशक में जो वैश्विक महामंदी आई थी, उसका एक बड़ा कारण प्रोत्साहन नीति का न होना तो था ही, बैंकों का धराशायी होते जाना भी था। बैंकों के पास ऐसी नीतियों का घोर अभाव था कि वे दिए गए कर्जों का उत्पादक इस्तेमाल सुनिश्चित कर पाते। इस नीतिगत कमी ने न सिर्फ अर्थव्यवस्थाओं को गंभीर नुकसान पहुंचाया, बल्कि मंदी की अवधि को भी विस्तार दे दिया। बर्नेन्की जहां बैंकों की विफलता के बाद की स्थिति के बारे में बताते हैं, तो वहीं डायमंड-डिबविग बताते हैं कि बैंक धराशायी क्यों हुए थे? बकौल डायमंड-डिबविग, बैंक जमाकर्ताओं के भरोसे को बहाल रखने में नाकाम हो गए थे, इसलिए उनकी हालत खराब होने की अफवाह क्या उड़ी, खाताधारक अपना जमा धन निकालने के लिए एक साथ बैंकों की ओर दौड़ पड़े। चूंकि बैंकों ने लंबी अवधि के लिए कर्ज दे रखा था, अत: फौरन वसूली में वे सक्षम न थे। इसी नीतिगत कुप्रबंधन ने उनकी लुटिया डुबोई।

नोबेल सम्मान की प्रतिष्ठा और प्रासंगिकता अब तक अक्षुण्ण है, तो इसकी एक बड़ी वजह यह है कि इसके सम्मानितों का योगदान भविष्य की बेहतरी के लिहाज से बड़ा रहा है। विज्ञान, अर्थशास्त्र, साहित्य या विश्व-शांति से जुड़े हुए इन सम्मानित लोगों ने तंत्र और इंसानियत को रास्ता दिखाने का काम किया है। निस्संदेह, नोबेल सम्मान भी विवादों और आलोचनाओं से परे नहीं हैं, बल्कि हाल के वर्षों में कई नोबेल सम्मानों को लेकर काफी टीका-टिप्पणी भी हुई, पर एक लोकतांत्रिक विश्व में ऐसी आलोचनाओं, ऐसे विमर्शों का स्वागत ही किया जाना चाहिए। अलबत्ता, इन तीनों अर्थशा्त्रियों ने जो बातें बताई हैं, वे वित्तीय तंत्र के लिए बेहद महत्वपूर्ण हैं और यकीनन दुनिया भर की अर्थव्यवस्थाओं को उनकी स्थापनाओं से मदद मिलेगी।